International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 62-64

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 62-64
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-02-2022
Accepted: 19-04-2022

श्याम लाल
शोध-छात्र, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड आई.एस., साधु आश्रम होशियारपुर पञ्जाब विश्वविद्यालय, पञ्जाब, भारत

Corresponding Author:
श्याम लाल
शोध-छात्र, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड आई.एस., साधु आश्रम होशियारपुर पञ्जाब विश्वविद्यालय, पञ्जाब, भारत

पातञ्जल योगाभिमत क्रियायोग

श्याम लाल

प्रस्तावना

आधुनिक जीवन शैली ने पर्याप्त शारीरिक श्रम न कर पाने की स्थिति में आजकल सर्वत्र योग की चर्चा है। सशक्त एवं स्वस्थ शरीर और संतुलित मन के लिए प्राचीन ऋषियों ने जिस कल्याणकारी मार्ग का निर्देश किया है, वह योग है। योग शब्द युज् धातु में घञ् प्रत्यय लगने से निष्पन्न होता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज् धातु तीन गणों में पठित है, युजिर योगे[1], युज् समाधौ[2] तथा युज् संयमने[3]। इन तीनों धातुओं का अर्थ क्रमशः जोड़ना, समाधि और संयमन होता है। यद्यपि योगशास्त्र के आदि प्रणेता के रूप में हिरण्यगर्भ को माना जाता है।[4] तथापि सम्प्रति योगदर्शन का प्रतिनिधि तथा बहुप्रचलित ग्रन्थ महर्षि पतञ्जलि कृत योगसूत्र ही है।

महर्षि पतञ्जलि ने योग सूत्र में योग को इस प्रकार परिभाषित किया है — योगाश्चितवृत्तिनिरोधः[5]। अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। पतञ्जलि ने योग के दो प्रकार बताए है जैसे सम्प्रज्ञातयोग[6] तथा असम्प्रज्ञातयोग[7]।

इन्होंने योगसूत्र में विविध साधकों हेतु त्रिविध साधन बताएं हैं, जैसे -उत्तम साधकों के लिए अभ्यास तथा वैराग्य[8], मध्यम साधकों हेतु क्रियायोग अर्थात्त तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान[9] और मन्द साधकों के लिए अष्टाङ्गयोग[10] का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उत्तम अधिकारी के लिए ईश्वरप्रणिधान रूप वैकल्पिक साधन का भी पतंजलि ने निर्देश किया है।

यहाँ हमारा विवेचनीय विषय मध्यमसाधकों हेतु साधनपाद में उपदिष्ट क्रियायोग है। इस साधना के अंतर्गत तीन तत्त्व आते हैं। जैसे

1. तपः
2. स्वाध्याय
3. ईश्वरप्रणिधान[11]

तप

द्वन्दों को सहना ही तप कहलाता है। द्वन्दों से तात्पर्य क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्णता, आसन-स्थान, काष्ठमौन एवं आकारमौन आदि है।[12] तप के द्वारा अनादि कालीन अशुद्धि का क्षय होने से शरीर एवं इन्द्रियों की सिद्धियां प्राप्त हो जाती है।[13] यह अशुद्धि अनादिकालीन कर्म एवं क्लेश की वासनाओं से चित्रित है तथा इसके फलस्वरूप ही विभिन्न विषय समूह प्रस्तुत होकर चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं। वाचस्पति मिश्र के अनुसार त्रिगुणात्मक चित्त में जब सत्त्व गुण को अभिभूत कर रज एवं तमोगुण का उद्रेक हो जाता है, तब वह दशा चित्त की अशुद्धि कहलाती है।[14] तप की महता को प्रदर्शित करते हुए भाष्यकार व्यास ने तो यहाँ तक कहा है कि जो तपस्वी नहीं है, उसे योग सिद्ध हो ही नहीं सकता।[15]

स्वाध्याय

स्वाध्याय से तात्पर्य प्रणव आदि पवित्र मन्त्रों का जप करना तथा मोक्षप्रद शास्त्रों का निरन्तर अध्ययन करना है। वाचस्पति मिश्र प्रणव आदि की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, कि पुण्य सूक्त, रूद्रमण्डल एवं ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थ तथा ब्रह्मपरायण आदि पौराणिक ग्रन्थों का अध्ययन ही स्वाध्याय है।[16] विज्ञानभिक्षु के मत में जिन पवित्र मन्त्रों के जाप को स्वाध्याय कहा गया है, उनसे किन्हीं विशिष्ट मन्त्रों को नहीं समझना चाहिए वरन् जो भी मन्त्र पापों को क्षीण करने में समर्थ हो वही पवित्र मन्त्र है।[17] विज्ञानभिक्षु और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते है कि जिस देवता को साधक देखता है, स्वाध्याय के द्वारा वही देवता उसे दृष्टिगत हो जाता है।[18]

ईश्वरप्रणिधान

क्रियायोग के मध्य वर्णित तीनों क्रियाओं में ही ईश्वरप्रणिधान का सर्वाधिक महत्व है।[19] क्रियायोग एवं नियम दोनों के अंतर्गत ही इसका प्रधान रूप से वर्णन किया गया है। सब कर्मो को ईश्वर में अर्पण करना ही ईश्वरप्रणिधान कहलाता है। समाधिपाद के अंतर्गत जिस ईश्वर का वर्णन किया गया है, उसके स्वरूप को स्वयं सूत्रकार ने ही "तज्जपः तदर्थभावनम्" [20] के द्वारा स्पष्ट कर दिया है, किन्तु साधनपाद में यहाँ क्रियायोग के अंतर्गत तथा अष्टांगयोग में नियमान्तर्गत किसी भी स्थलों पर इसे स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि समस्त कर्मों का उस परम गुरु में समर्पित करना अथवा किये हुए कर्मों के फल का सन्यास ही ईश्वरप्रणिधान है।[21] वाचस्पति मिश्र ने यहाँ कर्मगुरु का अर्थ ईश्वर करते हुए उसमें ही समस्त कर्मफलों को समर्पित करने को कहा है।[22] विज्ञानभिक्षु लिखते हैं कि लौकिक और वैदिक समस्त क्रियाओं का अन्तर्यामी परमेश्वर में समर्पित करना ही ईश्वरप्रणिधान है।[23]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि क्रियायोग के द्वारा क्लेशों की क्षीणता एवं समाधि की सिद्धि हो सकती है। अतः क्रियायोग मोक्ष एवं ज्ञान प्राप्ति में सहायक एक विशिष्ट साधन है।

संदर्भ सूची

1. वैयाकरणसिद्धांत कौमुदी। धातुपाठ, 1445
2. तदेव। धातुपाठ, 1178
3. तदेव। धातुपाठ, 1807
4. हिरण्यगर्भ योगस्य वक्तानान्यः पुरातनः। योगवार्तिक, 1.17
5. योगसूत्र । 1.2
6. वितर्कविचारानन्दाऽस्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः। योगसूत्र, 1.17
7. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः। योगसूत्र, 1.18
8. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगसूत्र, 1.12
9. तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। योगसूत्र, 2.2
10. यमनियमासनप्रणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। योगसूत्र, 2.29

11. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानि क्रियायोगः। योगसूत्र, 2.2
12. तपो द्वंदसहनम्। द्वंदश्च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने काष्ठमौनाकारमौने च। व्या.भा.पृ.247
13. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्त्तपसः। योगसूत्र.2.43
14. अशुद्धी रजस्तमः समुद्रेक। तत्त्ववैशारदी.पृ.136
15. नातपस्विनो योगः सिध्यति। वैयाकरण भाष्य. पृ.136
16. तत्त्ववैशारदी। .पृ.137
17. पवित्राणां पापक्षयहेतुनाम्। योगवार्तिक.पृ.138
18. संप्रयोगो दर्शनं यां देवतां द्रष्तुमिच्छित सैव दश्या भवतीत्यर्थः। योगवार्तिक.पृ.260
19. एतैषु दशसु मध्य ईश्वरप्रणिधानस्य मुख्यतो..... शय्यासनेति। योगवार्तिक.पृ.241
20. योगसूत्र। 1.28
21. ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा। वैयाकरण भाष्य.पृ.136
22. परमगुरुः भगवानीश्वरः तस्मिन्। तत्त्ववैशारदी. पृ. 137
23. योगवार्तिक। पृ.138